नमो नमः श्री गुरु राम-जगच्चन्द्र सूरये ॥

ई.सु. 2, 2072 Uttarvasi Patan

श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनम्

परिभाषा सूत्र 7-4-104 → 122

चन्द्रकान्त भाई पंडितजी, पाटण

★ पञ्चम्या निर्दिष्टे परस्य 7-4-104

सूत्रार्थ ▶ पंचमी से निर्दिष्ट सूत्र में जो कार्य कहा गया है, वह अव्यवहित ऐसे पर का होता है।

eg. अतो भिस ऐस् 1-4-2 → अ में 'प्रथमात्यन्यार्थ-दिग्शब्दबहिरादितरैः 2-2-75' से पंचमी विभक्ति पंचमी से निर्दिष्ट सूत्र है। इस सूत्र में ऐस् कार्य है। यह कार्य पर का यानि पञ्चम्यन्त से पर रहे भिस् का करना है। वृक्ष + भिस् ⇒ वृक्ष + ऐस् ⇒ वृक्षैः

विशेष ① लोक में पर शब्द का प्रयोग व्यवहित (दूर) भाव (पर) में भी होता है। eg. महोदयात् परं साकेतम्, यहाँ महोदय पर्वत और साकेत नगर में बहुत व्यवधान है किन्तु पर शब्द का उपयोग किया गया है। व्याकरण शास्त्र में मात्र अव्यवहित भाव में ही कार्य करने के लिए 'अव्यवधेः' लिखा गया eg. दृषद्भिः → ष में इ है, इ से पर भिस् है किन्तु द् का व्यवधान है।

② अतो भिस ऐस् में कि शब्द से पंचमी वि. है। कि शब्द से होने वाली पंचमी वि. में कार्य आगे-या पीछे वाले अर्थात् पूर्व या पर दोनों का हो सकता है। किन्तु यहाँ मात्र पर का कार्य करने के लिए 'परस्य' शब्द लिखा। eg. मात्रामित्र → भिस् है, अत्र के त्र का संयोग है किन्तु भिस् पूर्व में है इसलिए कार्य नहीं होगा।

★ सप्तम्या पूर्वस्य 7-4-105

सूत्रार्थ ▶ सप्तमी से निर्दिष्ट सूत्र में जो कार्य कहा गया है, वह अव्यवहित ऐसे पूर्व का होता है।

eg. दध्यत्र → दधि + अत्र 'इवर्णादिरस्वे स्वरे यवरलम् 1-2-21 सूत्र से इ → य् हुआ है। अस्वे स्वरे में औपश्लेषिक सप्तमी वि.। उपश्लेष यानि एक देश संयोग। इ के लिए अ अस्व स्वर है। अस्वस्वर पर में है, इ वर्ण पूर्व में है, स्व सप्तमी से उक्त कार्य पूर्व ऐसे इ का य होता है।

विशेष ① लोक में पूर्व शब्द व्यवहित भाव में भी होता है। eg. मथुरायाः पूर्वं पाटलिपुत्रम्, यहाँ मथुरा और पाटलिपुत्र में बहुत व्यवधान है किन्तु पूर्व शब्द का प्रयोग है। व्याकरण शास्त्र अव्यवहित भाव में ही पूर्व का कार्य करने के लिए 'अव्यवधेः' पद रखा। eg. दध्यत्र में इ और अ में व्यवधान नहीं है। सम्मित्र → म् में इ है, अत्र का अ पर में है, किन्तु द् का व्यवधान है।

② औपश्लेषिक अधिकरण पूर्व और पर दोनों में संभव है, किन्तु यहाँ पर अधिकरण में पूर्व का ही कार्य करना है।

★ षष्ठ्याऽन्त्यस्य 7-4-106

सूत्रार्थ ▶ सूत्र में षष्ठी विभक्ति से जो कार्य कहा हो, वह कार्य षष्ठ्यन्त पद के अन्त्य वर्ण का होता है।

eg. अष्टाभिः → 'वाष्टनः आः स्यादौ' 1-4-52 में अष्टन् शब्द षष्ठ्यन्त है, आ कार्य है, तो अष्टन् के अन्त्य वर्ण न् का आ कर दिया। अष्टन् + भिस् ⇒ अष्ट आ + भिस् ⇒ अष्टाभिः

★ अनेकवर्णः सर्वस्य 7-4-107

सूत्रार्थ ▶ सूत्र में षष्ठी वि. से जो कार्य कहा हो, वह कार्य यदि अनेकवर्ण वाला हो, तो पूरे षष्ठ्यन्त पद

का ही कार्य करना। यह सूत्र ऊपरवाले सूत्र का अपवाद है। यदि कार्य एकवर्ण वाला हो तो ऊपर वाले सूत्र से सिर्फ अन्त्य वर्ण का और यदि कार्य अनेकवर्णी हो तो इस सूत्र से पूरे पद का करना।

eg. तिसृभिः → त्रि + भिस् 'त्रिचतुरस्तिसृचतसृ स्यादौ 2-1-1' सूत्र लगेगा। इस सूत्र में कार्य 'तिसृ' अनेकवर्णी है, इसलिए षष्ठ्यन्त पद 'त्रि' का 'तिसृ' करना, त्रि के इ का नहीं।

त्रि ⇒ तिसृ + भिस् ⇒ तिसृभिः

विशेष यह सूत्र निर्दिश्यमान पद की अपेक्षा वाला है। eg. व्याघ्रपाद् समास है। मूल शब्द पाद है, 'पात्पादस्याहस्त्यादेः 7-3-148' सूत्र से पाद → पाद् आदेश। यहाँ यदि सूत्र निर्दिश्यमान पद की अपेक्षा वाला न हो तो 'व्याघ्रपाद' का पाद् हो जाता किन्तु हमें सिर्फ 'पाद' का पाद् करना है। इसी प्रकार तीर्णम् → तॄ + क्त 'ऋतां क्ङिति 4-4-117' सूत्र से ऋ → इर् आदेश। यदि यहाँ निर्दिश्यमान् पद की अपेक्षा न लें तो अनेकवर्णी कार्य होने से पूरे तॄ धातु का इर् हो जाता

★ प्रत्ययस्य 7-4-108

सूत्रार्थ प्रत्यय के स्थान पर होने वाला कार्य, भले ही एकवर्णी हो या अनेकवर्णी हो, पूर प्रत्यय का ही कर

eg. सर्वे → सर्व + जस् 'जसइः 1-4-9' से जस् का इ आदेश। इ एकवर्णी होने पर भी इस सूत्र से पूरे जस् का इ करना। ⇒ सर्वे।

★ स्थानीवाऽ वर्णविधौ 7-4-109

संधि विच्छेद स्थानी इव अवर्णविधौ

सूत्रार्थ वर्णविधि सिवाय स्थान यानि आदेश स्थानी यानि आदेशी जैसा होता है।

स्थानीव → आदेश = कार्य = स्थान आदेशी = जिसका आदेश हुआ हो वह = कार्यी = स्थानी

आदेश आदेशी जैसा होता है, इसके 6 प्रकार है धातु-प्रकृति-विभक्ति-कृत्-प्रत्यय-पद।

1. धातु का आदेश धातु जैसा होता है eg. भव्यम् - मूल धातु अस्, 'अस्ति-भुवो भूर्वा चावशिषि 4-4-1 सूत्र से अस् → भू आदेश हुआ। इस भू आदेश को कोई सूत्र नहीं लग सकता, क्योंकि सभी सूत्रों में भू आदेश का कोई सूत्र नहीं है। इसलिए यहाँ इस परिभाषा से भू (धात्वादेश) अस् (धातु) जैसा मानकर भव्यम् रूप सिद्ध करना।

2. प्रकृति का आदेश प्रकृति जैसा होता है eg. कस्मै - मूल किम् सर्वनाम, 'किमः कस्तसादौ च 2-4-42 सूत्र से किम् का क आदेश। इस यह क आदेश सर्वादि गणपाठ में न आने से 'सर्वादेः स्मै-स्मात 1-4-7' सादि सूत्र नहीं लग सकते। इसलिए सर्वनाम प्रकृति है का क आदेश मूल सर्वनाम जैसा इस परिभाषा से मानकर सर्वादि प्रमाणे कार्य कर कस्मै रूप सिद्ध हुआ।

3. विभक्ति का आदेश विभक्ति जैसा होता है eg. राजा - मूल शब्द राजन् + सि प्रत्यय, 'दीर्घङ्याब् व्यञ्जनात् सेः 1-4-45' सूत्र से सि का लोप। राजन् + ० , यदि '० लोप' को सि जैसा न माने तो 'नाम-सिदय्व्यञ्जने 1-1-21' से राजन् को पद संज्ञा नहीं होती, 'नाम्नो नोऽनह्नः 2-1-9 से न् का लोप भी नहीं होता। इसलिए लोप (विभक्ति आदेश) को (विभक्ति) सि मानकर कार्य कर राजा रूप सिद्ध करना। '० लोप' सि जैसा घुट् प्रत्यय मानकर न् के पहले का स्वर दीर्घ करना

4. कृत् प्रत्यय का आदेश कृत् जैसा होता है eg. प्रकृत्य → प्र+कृ धातु + त्वा प्रत्यय, त्वा प्रत्यय को 'आ तुमोऽत्यादिः कृत् 5-1-1' से कृत् संज्ञा। 'अनञः क्त्वो यप् 3-2-154' से त्वा का यप् आदेश। यह यप् आदेश यदि क्त्वा जैसा कृत् न माने तो 'हूस्वस्य तः पित्कृति 4-4-114' सूत्र नहीं लगता क्योंकि यप् पित् तो है, कृत् नहीं है। इसलिए इस सूत्र से यप् को कृत् मानकर यह सूत्र लगाकर त् का आगम करना और प्रकृत्य रूप सिद्ध करना।

5. अव्यय का आदेश अव्यय जैसा होता है eg. प्रस्तुत्य → प्र+स्तु धातु + त्वा → यप्, 'अनञः क्त्वो यप् 3-2-154' से त्वा का यप् आदेश। त्वा प्रत्ययान्त नाम 'क्त्वातुमम् 1-1-38' सूत्र से अव्यय होता है। यदि यप् आदेश अव्यय न हो तो 'प्रस्तुत्य + सि' में 'अव्ययस्य 3-2-7' सूत्र नहीं लगत और प्रस्तुत्य की जगह प्रस्तुत्यः रूप सिद्ध होता। इसलिए यप् आदेश को त्वा जैसा अव्यय मानना जिससे 'अव्ययस्य' सूत्र लगाकर प्रस्तुत्य रूप सिद्ध हो।

6. पद का आदेश पद जैसा होता है eg. धर्मो वो रक्षतु → मूल धर्मो युष्मान् रक्षतु, युष्मान् का वस् आदेश। यदि वस् आदेश को स्थानिवत् पद न माने तो वस् में 'घोषवति 1-3-21' सूत्र नहीं लगता। इसलिए वस् (पदादेश) को युष्मान् जैसा मानकर 'तदन्तं पदम् 1-1-20' से पद संज्ञा कर 'सोरूः 2-1-72', 'घोषवति 1-3-21' सूत्र लगाकर 'वो' रूप करना।

अवर्णविधौ → वर्णविधिः = वर्णाश्रयः विधिः वर्ण के आश्रय से होती विधि वर्णविधि, वर्णविधि में स्थान स्थानिवत् नहीं होता। वर्णविधि 5 प्रकार की -

1. वर्णात् परस्य विधिः = ~~वर्ण की पर~~ वर्ण से पर में होने वाली विधि। eg. द्यौः → दिव्+सि 'दिव औः सौ 2-1-117' सूत्र से व् का औ हुआ। औ (आदेशी) यदि व् (आदेशी) जैसा माने अर्थात् व्यञ्जन माने तो 'दीर्घड्याब्व्यञ्जनात् सेः 1-4-45' से सि प्रत्यय का लोप हो जाता और 'द्यौ' ऐसा अनिष्ट रूप सिद्ध होता। इसलिए वर्ण (व्) से पर में की (सि) विधि में स्थानिवद् मानना नहीं यानि औ व् जैसा नहीं मानने से 1-4-45 सूत्र नहीं लगेगा और सि का लोप नहीं होगा, द्यौः रूप सिद्ध होगा। अन्य दृष्टान्त → पन्थाः, सः

2. वर्णे परतः विधिः = वर्ण पर में होने पर विधि। eg. क इष्टः → यज् धातु, यज्यते स्म इति इष्टः, 'यजादिवचेः किति 4-1-79' से क्त प्रत्यय य → इ, 'यज-सृज-मृज...शः षः 2-1-87' से ज् का ष्, 'तवर्गस्य श्चवर्ग-ष्टवर्गाभ्यां योगे श्च-ष्टवर्गौ 1-3-60' से त् → ट इष्टः। इ (आदेशी) यदि य् (आदेशी) जैसा माने तो कस् इष्टः में 'सोरूः 2-1-72' और 'घोषवति 1-3-21' लगकर 'को इष्टः' ऐसा अनिष्ट प्रयोग होगा। इसलिए वर्ण (य्) पर में होने पर होने वाली विधि (घोषवति) में स्थानिवद् नहीं मानना यानि इ य् जैसा नहीं होगा और 'शेषः 1-3-26' तथा 'स्वरे वा 1-3-24' से र् का लोप होकर के इष्टः ऐसा प्रयोग सिद्ध होगा। अन्य दृष्टान्त → स उक्तः

3. वर्णस्य स्थाने विधिः = वर्ण के स्थान पर होने वाली विधि eg. श्रायं हविः → श्रीः देवता यस्य तद् श्रायं हविः। श्री + अण् प्रत्यय, ण् इत् से वृद्धि → श्रै, ऐ (आदेश) यदि ई (आदेशी) जैसा माने तो 'अवर्णेवर्णस्य 7-4-68' सूत्र से ई का लोप हो जाता। इसलिए यहाँ (ऐ) वर्ण के स्थान पर होने वाली विधि (लोप) में स्थानिवद् नहीं मानना और श्रै + अ में 'एचोऽयवायावः 1-2-33' से आय् रूप सिद्ध होगा।

4. वर्णेन विधिः = वर्ण द्वारा होने वाली विधि eg. उरःकेण → ~~ऊरः~~ उरस् शब्द, के धातु शब्द करना, उरः कायति इति उरःकः। के → का 'आत् सन्ध्यक्षरस्य 4-2-1' 'आतो ङोऽह्वा-वा-मः 5-1-76' से डः प्रत्यय कः। उरःक तेन उरःकेण। उरस् में अन्तर्वर्ती विभक्ति मानकर स् का : किया है। स् (आदेश) यदि : (आदेश) की जगह माने तो न् का ण् नहीं हो सकता। इसलिए : को स् नहीं मानना और न् का ण् करना।

5. अप्रधानवर्णाश्रयः विधिः = अप्रधान वर्ण के आश्रय वाली विधि eg. प्रदीव्य → प्र + दीव् + त्वा → यप् 'अनञः क्त्वो यप् 3-2-154' से त्वा का यप्। यप् (आदेश) यदि क्त्वा (आदेशी) जैसा माने तो 'स्तायशितोऽत्रोणादेरिट् 4-4-32' से इट् आगम लगती। यहाँ इट् अप्रधान विधि से आने वाली है - क्त्वा और यप् दोनों अशित् हैं किंतु त्वा 'स्ताध' है और यप् 'स्ताध' नहीं है। स्ताध विशेषण है और अशित विशेष्य है। विशेषण से होने वाली विधि हमेशा अप्रधान होती है। इसलिए अप्रधान वर्ण के आश्रय वाली विधि (इट्) में स्थानिवद् नहीं मानकर इट् नहीं लगाना और प्रदीव्य रूप सिद्ध करना।

विशेष यह सूत्र स्थानी के वर्ण के आश्रय वाले कार्यों का प्रतिषेध करता है परंतु

1. आदेश के वर्ण के आश्रय वाले कार्य होते ही हैं eg. सर्वेषाम् → सर्व + आम्, 'अतर्णस्याऽम साम् 1-4-15' से आम् → साम् आदेश। साम् (आदेश) के वर्ण के आश्रय से जो कार्य होते हैं, वे करना अर्थात् साम् के स से 'एद् बहुस्भोसि 1-4-4' सूत्र लगकर सर्वेषाम् रूप सिद्ध हो

2. आदेशी के अनुबंध (इत्) वाले कार्य भी होते ही हैं eg प्रभिद्य → प्र + भिद् + क्त्वा → यप्, 'अनञः क्त्वो यप् 2-2-154' से त्वा → यप् हुआ। यप् वर्णविधि में त्वा जैसा नहीं माना जाएगा किन्तु त्वा के (आदेशी) के अनुबंध कित् वाले कार्य यहाँ भी होंगे, कित् के कारण ही भिद् का गुण नहीं हुआ।

★ स्वरस्य परे प्राग्-विधौ 7-4-110

सूत्रार्थ ~~क्र~~ के नि स्वर का आदेश, परनिमित्तक ~~जैसी~~ पूर्व की विधि में आदेशी जैसा होता है।

eg. कथयति → कथण् वाक्यप्रबन्धे, कथ 'चुरादिभ्यो णिच् 3-4-17' → कथ + णिच् 'अतः 4-3- से थ के अ का लोप → कथ् + णिच्, यहाँ णित् होने से उपान्त्य अ की वृद्धि हो जाती किन्तु थ को अ ~~का~~ (आदेशी) है और लोप (आदेश) है, इसलिए यहाँ अ का लोप परनिमित्तक है (णिच्) और अ के पूर्व की विधि (वृद्धि) भी णिच् पर निमित्तक है, इसलिए यहाँ अ का स्थानिवद् मानेंगे और अ स्थानिवद् होने से क का अ उपान्त्य नहीं होगा और वृद्धि भी नहीं होगी।

कथ + णिच्

वृद्धि की प्राप्ति (अ की पूर्वविधि) ← अ का स्थानिवद् ← अ के लोप का ~~वृद्धि की प्राप्ति का~~ निमित्त (पर निमित्त)

पादिकः → पादाभ्यां त्वरति इति पादिकः पाद + इकण् 'अवर्णेवर्णस्य 7-4-68' से पाद के अ का लोप पाद् + इकण्, यहाँ 'य-स्वरे पादः पदाणि-ब्य-चुटि 2-1-102' सूत्र से पाद् का पद् आदेश हो जाने की संभावना है। किन्तु अ का स्थानिवद् मानकर पाद् → पाद मानेंगे जिससे यह

सूत्र नहीं लगेगा। (अ का स्थानिवद्)
पाद् + इकण्
पद् की प्राप्ति (पूर्व विधि) (पद् अङ्गेश का निमित्त, पर निमित्त) अ के लोप का

संस्यते → संस् + णिग् + क्य + ते (प्रेरक कर्मणि), यहाँ 'णेरनिटि ६-३-६३' से णिग् का लोप। स्रंस् + क्य + ते, यहाँ 'नो व्यञ्जनस्याऽनुदितः ४-२-४५' से न् लोप की प्राप्ति है किन्तु णिग् आदेशी है और लोप आदेश है, न् लोप की विधि पर निमित्तक (क्य) है और पूर्व विधि है, इसलिए णिग् का स्थानिवद् मानकर यहाँ अनुस्वार का लोप नहीं करना।

स्रंस् + क्य + ते
न् लुक् प्राप्ति (पूर्व विधि) णिग् स्थानिवद् णिग् लोप न् लुक् का निमित्त (पर निमित्त)
स्वर का आदेश

प्रतिउदाहरण पर इति किम्? क्या पूर्व विधि पर निमित्तक ही होना चाहिए? हाँ, अवश्य।
eg. द्विपदिकां दत्ते → द्वौ पादौ ययाति इति द्विपदिका तस्यै। द्विपाद् + अकञ् 'संख्यादेः पादादिभ्यो दीर्घ-ऽण्डे-चाऽकञ्लुक् च ७-२-१५२' सूत्र से अकञ् प्रत्यय और इसी सूत्र से द् के अ का लोप, द्विपाद् + अकञ् यहाँ अ का लोप परनिमित्त यानि अकञ् के कारण नहीं हुआ इसलिए पाद् का 'य-स्वरे पादः पदाऽणि-क्य-घुटि २-१-१०२' से पद् आदेश हो गया द्विपद् + अक 'अस्याऽयत्-तत्-इदिपकादीनाम् २-४-१११' सूत्र से अ का इ हुआ द्विपदिकां दत्ते का प्रयोग सिद्ध होगा।

प्राग्विधौ इति किम्? पूर्व विधि में ही स्थानिवद् मानना है? हाँ,
eg. नैधेयः → निधानं इति निधिः, निधेः अपत्यं इति नैधेयः
निधा + कि = निधिः
निधि + एयण् = नैधेयः 'इतोऽत्रिञः ६-१-७२ से एयण् प्रत्यय।
निध् + एयण् 'अवर्णेवर्णस्य ७-४-६८' से इ का लोप
नैधेयः
धा धातु के आ का कि प्रत्यय पर इ हुआ। यदि इ की जगह आ को स्थानिवद् मानो तो ६-१-७२ से एयण् प्रत्यय नहीं आ सकता क्योंकि वह सिर्फ इकारान्त पर ही लगता है। किन्तु यहाँ पूर्व विधि नहीं होने के कारण यानि तत्स्थानीय विधि होने से आ को स्थानिवद् नहीं मानना।

न सन्धि-डी-य-ख्रि-ट्वि-दीर्घा-ऽसङ्घि-यञ्-स्कोर्लुकि ७।४।१११
सूत्रार्थ ★ पूर्व विधि में जब सन्धि विधि, डी विधि, य विधि, ख्रि विधि, ट्वि विधि, दीर्घ विधि, और 'संयोगस्यादौ स्कोर्लुक् २-१-८८' की स्कोर्लुक् विधि सिवाय कोई भी असत् विधि करना हो तो पर निमित्तक स्वर के आदेश को स्थानिवद् नहीं मानना
eg. 1. संधि- वियनि → इण् धातु (गण २), वि + इ + अन्ति 'ह्विणोरचिति व्-यौ ५-३-१५' से इ का य्।
वि + य् + अन्ति
यहाँ य् स्वर का आदेश है और पर निमित्तक (अन्ति) है, तथा यदि स्थानिवद् माने तो य की

जगद् इ मनाय और वि+इ की 'सवर्णानां तेन दीर्घः 1-2-1' से संधि रूप पूर्व विधि हो। किन्तु इससे वी+अन्ति = वीन्ति, ऐसा अनिष्ट रूप बनने के कारण 7-4-110 की सभी शर्तें होने पर भी 7-4-111 से संधि रूप पूर्वविधि में स्थानिवद् मानना नहीं और 'वियन्ति' रूप सिद्ध करना।

2. ङी- बिम्बम् → बिम्ब + ङी 'गौरादिभ्यो मुख्यान्ङी 2-4-19' से ङी

बिम्ब + ङी 'अस्य इयां लुक् 2-4-86' से अ का लुक्

बिम्बी यानि बिम्ब फल का झाड़

बिम्ब बिम्ब्याः फलम् इति बिम्बम्, बिम्बी + अञ् 'हेमादिभ्योऽञ् 6-2-45' से अञ् प्रत्यय

बिम्बी + ङेञ् लोप 'फले 6-2-58' से

बिम्बी के ङी का लोप 2-4-95 से

बिम्बम् – ङी के कारण जो अ का लोप हुआ था, वह वापस आ जाएगा (निषेधाभाव के कारण)

यहाँ ङी का लोप स्वर का आदेश है और परनिमित्तक है (अञ् के लोप के कारण), यदि उसका स्थानिवद् माने तो ङी वापस आने से पूर्व के अ का लोप (पूर्वविधि) हो सकता है। किन्तु अनिष्ट रूप होने से 7-4-111 से ही विधि में ङी का स्थानिवद् नहीं मानना और बिम्बम् रूप सिद्ध करना।

3. य- कण्डूतिः → कण्डू धातु, 'धातोः कण्ड्वादेर्यक 3-4-8' से य प्रत्यय, कण्डूयति (नाम धातु)

कण्डूयनं इति कण्डूतिः, कण्डूय + ति 'अतः 4-3-82' से यू के अ का लोप

कण्डूय् + ति

यहाँ अ का लोप स्वर (इ) का आदेश है और पर निमित्तक (ति) है, यदि इसका स्थानिवद् माने तो य् का य होगा और फिर य का लोप नहीं होगा, जिससे अनिष्ट रूप सिद्ध होगा। इसलिए यहाँ य् के लोप रूप पूर्व विधि में 7-4-111 से य विधि में स्थानिवद् नहीं मानना।

कण्डूय् + ति ⇒ कण्डूतिः 'यो: प्वय्व्यञ्जने लुक् 4-4-122' से य् का लुक्

4. क्वि- दयूः → देवं आचष्टे इति देवयति, देवयति इति क्विप् दयूः

देव + णिज् 'णिज् बहुलं नाम्नः कृगादिषु 3-4-42'

देव् + णिज् 'अतः 4-3-82' व के अ का लोप

देवि + क्विप् 'ठोरनिटि 4-3-83' से णि का लोप

देव् + क्विप् 'अनुनासिके च च्छ्व-वः शूट् 4-1-108' से व् का ऊट्

देऊ → एदैतोऽयाय् दयूः

यहाँ णिज् का लोप स्वर का आदेश है और परनिमित्तक (क्विप्) है, व् का ऊट् करना पूर्वविधि है। इसलिए यदि यहाँ णिज् का स्थानिवद् माने तो ऊट् नहीं हो सकता इसलिए 7-4-111 से क्विप् विधि रूप पूर्वविधि में स्थानिवद् नहीं मानना।

5. द्वित्व- दद्ध्यत्र → दधि + अत्र 'इवर्णादेरस्वे स्वरे यवरत्वम्'

दध्यत्र

यहाँ य् स्वर (इ) का आदेश है और परनिमित्तक (अत्र के अ) है, ध् का द्वित्व पूर्वविधि है। यदि 7-4-110 से य् को स्थानिवद् माने तो स्वर (इ) आ जाने के कारण द्वित्व नहीं हो सकता।

अतः 7-4-111 से द्वित्व विधि रूप पूर्वविधि में स्थानिवद् नहीं मानना। और 'अदीर्घाद्

विरामैकव्यञ्जने 1-3-32' से ष् का द्वित्व कर ददृक्षत्र रूप सिद्ध करना।

6. दीर्घ- शामं शाममम् → शम् धातु = शांत होना, शांत करना (प्रेरक), शांत कराना (प्रेरक का प्रेरक)

शम् + णिग् ⇒ शामि + णम् प्रत्यय ⇒ शामि + णिग् + णम् 'णेरनिटि 6-3-83' से दूसरे णिग् का लोप
⇒ शामि + णम्

इस अवस्था में ~~7-4-110 से यदि~~ णिग् का लोप स्वरादेश है और परनिमित्तक (णम्) है, यदि इसका स्थानिवद् माने तो पूर्व में शम् ~~दीर्घ~~ 'शमोऽदर्शने 6-2-28' से दीर्घ नहीं हो सकता। यहाँ दीर्घ करने रूप पूर्वविधि है इसलिए 7-4-111 से दीर्घ विधि में अस्थानीव न मानकर विकल्प से दीर्घ कर शामं शाममम् प्रयोग सिद्ध करना।

7. असद् विधि- यायष्टिः → भृशं पुनः पुनः वा यजति = यायज्यते (यङन्त)

आशीः विभक्ति का रूप - यायजिषीष्ट। यायजिषीष्ट इति आशास्यमानः यायष्टिः

यायज्य + तिक् 'तिक्कितौ नाम्नि 6-1-71' से तिक् प्रत्यय, 'अतः 6-3-82' से अ का लोप

यायज्य् + तिक्

यहाँ अ का लोप स्वरादेश है और परनिमित्तक (तिक्) है। यहाँ यदि उसे स्थानिवद् माने तो ज् के बाद य आएगा, तिक् नहीं इसलिए 'यज-सृज-मृज... 2-1-87' सूत्र लगेगा नहीं। 'ष्ठा-धमसत् परे स्थादिविधौ च' 2-1-60' से लेकर 'रात् सः 2-1-90' तक असद् विधि है। 'यज-सृज-मृज... 2-1-87' भी असद् विधि का सूत्र है और 'संयोगस्यादौ स्कोर्लुक् 2-1-88' सिवाय का सूत्र है इसलिए 7-4-111 सूत्र के नियम से अ का स्थानिवद् नहीं मानकर रूप सिद्ध करना।

यायज्य् + तिक् ⇒ यायज् + तिक् 'व्योः प्वय्व्यञ्जने लुक् 6-4-121' 'यज-सृज-मृज... 2-1-87'

यायष्टिः

प्रतिप्रश्न अस्कलुकि इति किम् ? स् और क् के लुक् सिवाय की असद् विधि में ही स्थानिवद् नहीं मानना ? हाँ, स् और क् लुक् विधि में स्थानिवद् मानना।

eg. सुकूः → कुस्म् धातु गण 10 बारीकाई से तत्वाश करना कुस्मयति।

सुष्ठु कुस्मयति इति क्विप् सुकूः ⇒ सु + कुस्म् + णिच् + क्विप् 'नुगादिभ्यो णिच् 3-4-17'

'णेरनिटि 6-3-83' से णिच् का लोप सु + कुस्म् + क्विप्

इस अवस्था में सूत्र के नियम से णिच् का स्थानिवद् होगा क्योंकि सूत्र में 'संयोगस्यादौ स्कोर्लुक् 2-1-88' से होने वाली स् और क् के लोप की विधि में स्थानिवद् ~~लोप~~ होता है, इसके अलावा असद् विधि में स्थानिवद् नहीं होता। इसलिए जब भी स् को लोप करने का प्रयत्न करेंगे, तब णिच् का स्थानिवद् होगा और णिच् आने पर 'संयोगस्यादौ स्कोर्लुक् 2-1-88' सूत्र नहीं लगेगा, धातु का स् अखंड रहेगा।

अन्त प्रयोग की सिद्धि के लिए 'पदस्य 8-1-89' सूत्र से म् का लोप करना आवश्यक है, वह भी असद् विधि का सूत्र है। यह कार्य करने में यदि णिच् का स्थानिवद् माने तो म् पदान्त में न होने के कारण, लोप हो नहीं सकता। इसलिए असद् विधि णिच् का स्थानिवद् नहीं माना जाएगा, जिससे म् के बाद णि नहीं आएगा, क्विप् आएगा। सि प्रत्यय लगेगा 'नाम्नः प्रथमैक-द्वि-बहौ 2-2-3' से

सुकुस्म् + क्विप् + सि 'नाम सिद्ध्यत्यञ्जने 1-1-21' से सुकुस्म् को पद संज्ञा।

'दीर्घड्याब्व्यञ्जनात् सेः 1-4-45' से सि का लोप, 'अप्रयोगीत् 1-1-37' से क्विप् का लोप, 'पदस्य 2-1-89' से म् का लोप

सुकुस् 'सोरूः 24-1-72' ⇒ सुकुर् 'पदान्ते 2-1-64' से दीर्घ

सुकूर् 'रः पदान्ते विसर्गस्तयोः 1-3-53' ⇒ सुकूः बारीकाई से तलाश करने वाला।

सुकूः सुकुसौ सुकुसः / सुकूर्भ्याम्।

यहाँ भ् का ष् 'नाम्यन्तस्था-कवर्गात् पदान्तः कृतस्य सःशिट्-नान्तरेऽपि 2-3-15' सूत्र से स् का ष् नहीं होगा क्योंकि 'स्' स्वाभाविक है, किसी नियम से किया हुआ नहीं है।

काष्ठतक् ⇒ काष्ठं तक्षयति इति क्विप् काष्ठ + तक्ष् + णिग् + क्विप्

'णेरनिटि 4-3-83' से (प्रेक्) णिग् का लोप ⇒ काष्ठ + तक्ष् + क्विप्

यहाँ इस अवस्था में सूत्र के नियम से णिग् का स्थानिवद् होगा क्योंकि सूत्र में 'संयोगस्यादौ स्कोर्लुक् 2-1-88' से होने वाली स् और क् के लोप की विधि में स्थानिवद् होता है। इसलिए जब क् के लोप का प्रयत्न करेंगे, तब णिग् का स्थानिवद् होगा और णिग् आने से 2-1-88 नहीं लगेगा, धातु का क् अखंड रहेगा।

अब प्रयोग की सिद्धि के लिए 'पदस्य 2-1-89' से ष् का लोप आवश्यक है। यदि णिग् का स्थानिवद् माने तो 'पदस्य 2-1-89' नहीं लगेगा इसलिए असद् विधि में स्थानिवद् नहीं मानकर 'पदस्य 2-1-89' सूत्र से ष् का लोप करना।

काष्ठतक्ष् + क्विप् 'नाम्नः प्रथमैक-द्वि-बहौ 2-2-31' से सि प्रत्यय, 'नाम सिद्ध्यत्यञ्जने 1-1-21'

काष्ठतक्ष् + क्विप् + सि

'दीर्घड्याब्व्यञ्जनात् सेः 1-4-45' से सि लोप, 'अप्रयोगीत् 1-1-37' से क्विप् लोप, 'पदस्य 2-1-89' से ष् लोप

काष्ठतक् ।

सूत्रार्थ * लुप्यवृत्वत्वेनत् 7-4-112

प्रत्यय का लोप होने पर लोपभूत पर निमित्त वाला पूर्व कार्य नहीं होता किन्तु यदि वह कार्य वृत्, वत् और इनत् आदेश स्वरूप हो तो होता है।

[लुक् में स्थानिवद् होता है, लुप् में स्थानिवद् नहीं होता]

उदा. तद् ⇒ तद् सर्वनाम् तद् + सि 'नाम्नः प्रथमैक-द्वि-बहौ 2-2-31'

तद् + स् 'अनतो लुप् 1-4-59' से सि लोप।

यहाँ 'आद्धेः 2-1-41' सूत्र से द् का 'त' करने के लिए स्यादि प्रत्यय चाहिए। यदि सि का स्थानिवद् माने तो 'आद्धेः 2-1-41' और 'तः सौ सः 2-1-42' सूत्र लगते, जिससे अनिष्ट रूप सिद्ध होता। इसलिए सि के लुप् होने से स्थानिवद् नहीं हुआ, जिससे 'तद्' का नपुं. एकव 'तद्' ही रहा।

गर्गाः → गर्गस्य अपत्यानि गर्गाः। गर्ग + य = गार्ग्यः 'गर्गादे र्यञ् ६-१-४२'

गार्ग्यः गार्ग्यौ गर्गाः इति। बहुवचन में 'बहुष्वस्त्रियाम् ६-१-१२४' से यञ् का लोप। यहाँ गर्गाः प्रयोग में यञ् का लुप् होने से स्थानिवद् नहीं हुआ, जिससे स्वर को दीर्घ करने स्वरूप कार्य नहीं हुआ।

लुपीत्युक्ते लुकि स्यादेव - गोमान् → गोमत् + सि 'दीर्घङ्याब्व्यञ्जनात् सेः १-४-४५' से सि लुक् यहाँ लुक् होने से सि का स्थानिवद् मानकर वुए स्वरूप प्रत्यय पर स्वर दीर्घ, न् का आगम आदि कार्य हुए।

प्रतिउदाहरण अचृत्त्वेनेति किम्? क्या वृत्, त्व और एनत् आदेश रूप कार्य में स्थानिवद् करना? हाँ

1. वृत् - जरीगृहीति → भृशं पुनः पुनः वा गृह्णाति इति जरीगृहीति
   - ग्रह् + यङ् 'सन्यङश्च ५-१-३' से द्वित्व
   - ग्र ग्रह् + य 'व्यञ्जनस्यानादे र्लुकि ५-१-५५' से अनादि व्यञ्जन का लोप
   - गग्रह् + य 'गहो र्जः ५-१-५०' से पूर्व ग → ज, 'बहुलं लुप् ३-४-१४' से यङ् लुप्
   - जग्रह् + य 'ग्रह-व्रश्च-भ्रस्ज-प्रच्छः ५-१-८५' से क्वृत्
   - जगृह्य 'ऋदृमतां री ५-१-५५' से री का आगम
   - जरीगृह्य 'यङ्-लु-रु-स्तोर्बहुलम् ५-३-८५' से ई
   - जरीगृहीति

यहाँ 'बहुलं लुप् ३-४-१४' से यङ् का लुप् होने पर भी क्वृत् कार्य में स्थानिवद् मानकर वृत् किया है।

2. त्व् आदेश - निजागरीति → गृ धातु गर्हितं गिरति इति निजागरीति
   - गृ + यङ् 'गृ-लुप-सद-चर-जप-जभ-दश-दहो गर्ह्ये ३-४-१२' से यङ् निंदा अर्थ में
   - गृ + ति 'बहुलं लुप् ३-४-१४' से यङ् लुप्
   - गर् + ति 'सन्यङश्च ५-१-३' से द्वित्व
   - जगर् + ति 'अा-गुणावन्यादेः ५-१-४८'
   - जागर् + ति 'यङ्-लु-रु-स्तो र्बहुलम् ५-३-८५' से ई 'नि उपसर्ग'
   - निजागरीति 'त्रो यङि २-३-१०१' से र् का त्र् आदेश
   - निजागरीति

यहाँ यङ् का लुप् होने पर भी र् का त्र् आदेश करने में स्थानिवद् माना है।

3. एनत् आदेश - एनत् पश्य → एतत् + अम् 'अनतो लुप् १-४-५७' से अम् का लुप्
   - एतत् 'त्यदाम्नैनदेतदो द्वितीया-टौस्यवृत्त्यन्ते २-१-३३'
   - एनत् पश्य।

यहाँ अम् का लुप् होने पर भी अम् का स्थानिवद् माना है।

7-4-112 सूत्र का विशेष - 'स्थानीवऽवर्णविधौ 7-4-109' सूत्र से लोप का स्थानिवद् भाव मानकर प्राप्त होने वाले कार्य के प्रतिषेध के लिए यह सूत्र है।

Page No.
Date :

★ विशेषणमन्तः 7-4-113

सूत्रार्थ अभेद से कहा गया जो अवयव यानि विशेषण, विशेष्यरूप समुदाय का अन्तभूत होता है। अर्थात् उसमें 'अन्त' का अर्थ निकालना।

eg. अतः स्यमोऽम् 1-4-57 → अतः पञ्चमी विभक्ति, ऊपर से नाम्नः शब्द पंचमी वि. की अधिकार चालू है। अतः विशेषण है, नाम्नः विशेष्य है। अब यहाँ पर अतः का अर्थ (i) अकार आदि वाला नाम (ii) अकार वाला नाम (iii) अकारान्त नाम इन तीनों में से कौन सा अर्थ लेना, इसका नियामक सूत्र यह है। सूत्र कहता है अन्तभूत यानि (iii) अर्थ लेना। तो सूत्र का अर्थ हुआ - अकारान्त नाम से पर सि और अम् का अम् होता है। कुण्ड + सि ⇒ कुण्ड + अम् ⇒ 'समानादमो (नपुं.) 1-4-46' से अम् के अ का लोप ⇒ कुण्डम्।

प्रतिउदाहरण इह मा भूत् - तद् ⇒ तद् + सि तद् में अ तो है किन्तु वह अकारान्त नाम नहीं है इसलिए वहाँ 'अनतो लुप् 1-4-59' से सि का लुप् होगा।

अन्य उदाहरण 'न स्तं मत्वर्थे 1-1-23, नं क्ये 1-1-22' आदि।

★ सप्तम्या आदिः 7-4-114

सूत्रार्थ सूत्र में सप्तमी अन्त (सप्तम्यन्त) विशेष्य का जो विशेषण है, वह विशेष्य रूप समुदाय का आदि भूत होता है।

ऊपर वाले सूत्र का यह सूत्र अपवाद है।

eg. इन् ङी-स्वरे लुक् 1-4-879 → ङी-स्वरे सप्तमी विभक्ति, ऊपर से 'प्रत्यये' सप्तम्यन्त का अधिकार चालू है। ङी-स्वरे विशेषण है, प्रत्यये विशेष्य है। यहाँ पर 'विशेषणमन्तः 7-4-113' सूत्र से 'स्वरान्त प्रत्यय पर' ऐसा अर्थ होने वाला था किन्तु इस अर्थ के प्रतिषेध के लिए यह सूत्र बनाया है। इस सूत्र से सप्तम्यन्त विशेषण का अर्थ 'अन्तभूत नहीं' किन्तु आदिभूत लेना है। तो सूत्र का अर्थ हुआ पथिन्, मथिन्, ऋभुक्षिन् के इन् का ङी प्रत्यय और स्वरादि सुट् (अच्) प्रत्यय पर लुक् होता है।

पथिन् + शस् ⇒ पथ् + शस् ⇒ पथः

प्रतिउदाहरण इह मा भूत - पथिषु ⇒ पथिन् + सु ⇒ पथिषु सु प्रत्यय में स्वर तो है किन्तु स्वरादि नहीं है स्वरान्त प्रत्यय है।

★ प्रत्ययः प्रकृत्यादेः 7-4-115

सूत्रार्थ जिस नाम से जो प्रत्यय हुआ है, वह नाम उस प्रत्यय की प्रकृति कहा जाता है। प्रत्यय प्रकृति आदि समुदाय का विशेषण होता है किन्तु न्यून या अधिक प्रकृति समुदाय का नहीं।

eg. मातृभोगीणः → मातृभोगः = मातृभोगः। मातृभोगाय हितः = मातृभोगीणः

मातृभोग + ईन 'भोगोत्तरपदा-ऽऽत्मभ्यामीनः 7-1-40'

मातृभोगीन 'अवर्णेवर्णस्य 7-4-68' से अ का लुक्

यहाँ पर 'इन्' प्रत्यय 'मातृभोग' शब्द को लगा है इसलिए 'मातृभोग' प्रकृति है। इन् का ण् करने का निमित्त ऋ, मातृ शब्द रूप से पूर्वपद में है, भोग रूप उत्तरपद में नहीं है। किन्तु 'मातृभोग' पूरा शब्द ही प्रकृति होने से (i) प्रत्यय के कार्य पूरी प्रकृति में और (ii) प्रकृति से होने वाले कार्य प्रत्यय में होंगे। इसलिए यहाँ न् का ण् होगा। मातृभोगीणः।

प्रतिउदाहरण 1. न्यून- प्रत्यय प्रकृति से न्यून प्रकृति समुदाय का विशेषण नहीं होगा।

eg. मातृभोगीणः → मातृभोगीण + सि प्रत्यय। यहाँ ईन भी प्रत्यय है इसलिए प्रश्न होता है कि प्रत्यय (ईन) के पीछे प्रत्यय (सि) कैसे आ सकता है? किंतु उत्तर है कि प्रत्यय प्रकृति रूप समुदाय का विशेषण होता है और प्रत्यय जिसके पीछे लगता है, वह प्रकृति है। इसलिए सि प्रत्यय के लिए 'मातृभोगीण' पूरा शब्द प्रकृति है, मात्र 'मातृभोग' नहीं क्योंकि प्रत्यय न्यून समुदाय का नहीं किंतु प्रकृति समुदाय का विशेषण होता है।

2. अधिक- प्रत्यय प्रकृति से अधिक समुदाय का विशेषण नहीं होगा।

eg. महान्तं पुत्रमिच्छति - इस प्रयोग में क्यन् प्रत्यय लगाकर प्रयोग नहीं कर सकते क्योंकि क्यन् प्रत्यय एकटी द्वितीयान्त पद का विशेषण बनता है, अधिक पदों का नहीं। समास कर प्रयोग कर सकते हैं, जैसे- महांश्चासौ पुत्रश्च महापुत्रः, तं महापुत्रं इच्छति इति क्यन् महापुत्रीयति।

★ गौणो ङ्यादिः 7-4-116

अन्वय सूत्र गौणः ङ्यादिः विशेषणम्

ङ्यादि = ङी से शुरू कर ष्य आदेश तक के प्रत्यय। ङी, आप्, ति, ऊङ्, ष्य (स्त्री प्रत्यय)

सूत्रार्थ ङी आदि गौण होने पर प्रकृति आदि समुदाय केवल विशेषण होते हैं।

eg. अतिकारीषगन्ध्यबन्धुः → करीषगन्ध इव गन्धः यस्य स करीषगन्धिः

'वोपमानात् 7-3-147' से इच् समासान्त प्रत्यय ⇒

करीषगन्ध + इच् 'अर्वर्णेवर्णस्य 7-4-68' से अ का लोप

⇒ करीषगन्धिः, तस्य पौत्रादि अपत्यं = कारीषगन्धः

करीषगन्धि + अण् 'इसोऽपत्ये 6-1-28' से पौत्रादि अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय

⇒ कारीषगन्धः 'वृद्धिः स्वरेष्वादेर्णिति तद्धिते 7-4-1' से वृद्धि, 'अर्वर्णेवर्णस्य 7-4-68' से इ लोप

कारीषगन्ध = करीषगंध स्त्री का पौत्रादि स्त्री अपत्य। स्त्रीलिंग करने के लिए '2-4-18 अनार्षे..' से अण् का ष्य आदेश कारीषगन्ध्य + आप् 'आत् 2-4-18 से आप् प्रत्यय

⇒ कारीषगन्ध्या,

कारीषगन्ध्यां अतिक्रान्तः ⇒ अतिकारीषगन्ध्यः 'प्रात्यव-परि-निरादयो.. 3-1-47' से समास बहुव्रीहि 'गोश्चान्ते ष्ढ्रस्वोऽनार्षेसमासेयोबहुव्रीहौ 2-4-96' से ह्रस्व

इस प्रयोग में समास अन्य पद प्रधान होने से ष्य गौण हुआ।

अतिकारीषगन्ध्यः बन्धुः यस्य स अतिकारीषगन्ध्यबन्धुः।

इस प्रयोग में समास अन्यपद ष्य गौण होने के बाद 'बन्धु' पद अधिक आया है। यह ष्य अधिक

पद का विशेषण नहीं होता है इसलिए 'बन्धौ बहुव्रीहौ 2-4-24' से ष्य का ईच् आदेश होकर अतिकारीषगन्धीबन्धुः ऐसा अशुद्ध प्रयोग नहीं हुआ। अर्थात् ष्य आदेश ने कार्य करने में 'बन्धु' पद का स्वीकार नहीं किया।

प्रतिउदाहरण — गौण इति किम्? क्या गौण इत्यादि ही प्रकृति समुदाय का विशेषण बनते हैं? हाँ, गौण इत्यादि ही प्रकृति समुदाय का ही विशेषण बनते हैं, अधिक का नहीं। मुख्य इत्यादि हो तो अधिक पद का भी विशेषण बनते हैं।

उ. परमकारीषगन्धीबन्धुः → कारीषगन्ध्या पूर्ववत्

परमा चासौ कारीषगन्ध्या च परमकारीषगन्ध्या 'सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्ट पूजायाम् 3-1-10'

परमकारीषगन्ध्या बन्धुः यस्य स परमकारीषगन्धीबन्धुः

इस प्रयोग में कर्मधारय समास होने से 'ष्य' गौण नहीं हुआ। मुख्य 'ष्य' 'बन्धु' पद से अधिक प्रकृति का स्वयं में स्वीकार करने से 'बन्धौ बहुव्रीहौ 2-4-24' से ईच् आदेश होकर प्रयोग सिद्ध होता है।

भावार्थ — मुख्य और गौण, दोनों प्रकार के इत्यादि स्त्री प्रत्यय 'प्रत्ययः प्रकृत्यादेः 7-4-115' सूत्र से प्रकृति रूप समुदाय के ही विशेषण बनते किन्तु मुख्य इत्यादि प्रत्यय अधिक पद को भी स्वीकारते हैं और गौण इत्यादि प्रत्यय नहीं स्वीकारते हैं, ऐसा भेद करने के लिए यह सूत्र है

★ कृत् सगतिकारकस्यापि 7-4-117

सूत्रार्थ — कृत् प्रत्यय (1) गतिपूर्वक, (2) कारक पूर्वक और प्रकृति रूप समुदाय का और अपि शब्द से (3) केवल प्रकृति का विशेषण होता है।

उ. (1) गतिपूर्वक प्रकृति - उदकेविशीर्णम् → त प्रत्यय 'तत्पुरुषे कृति 3-2-20' से कृदन्त के साथ तत्पुरुष समास। वि उपसर्ग गति संज्ञा वाला है। क्त (त) प्रत्यय तो शृ धातु से हुआ है और शीर्ण शब्द बना है। विशीर्ण में शृ धातु क्त की प्रकृति है, इसलिए यहाँ वि उपसर्ग अधिक है। 'प्रत्ययः प्रकृत्यादेः 7-4-115' सूत्र से शीर्ण कृदन्त में त प्रत्यय अधिक का स्वीकार नहीं करता और 'तत्पुरुषे कृति 3-2-20' से वि उपसर्ग कृदन्त न होने से समास नहीं होता।

किन्तु 7-4-117 सूत्र 7-4-115 का अपवाद सूत्र है। इस सूत्र से गति संज्ञक सहित क्त धातु कृत प्रत्यय की प्रकृति बनता है अर्थात् कृत् प्रत्यय भी अधिक का स्वीकार करता है, जिससे समास हो गया।

(2) कारक पूर्वक - अवतप्तेनकुलस्थितम् → त प्रत्यय सिर्फ स्था धातु में लगा है। नकुल तो कर्ता कारक है इसलिए समास नहीं होता। किन्तु इस सूत्र से त (क्त) प्रत्यय कारक (नकुल) को भी स्वीकारता है जिससे '3-2-20' से समास होता है।

(3) केवल प्रकृति - भस्मनिहुतम् → हु धातु + त (क्त) प्रत्यय। कृत् प्रत्यय (त) केवल प्रकृति का भी विशेषण होता है, जिससे 'तत्पुरुषे कृति 3-2-20' से समास होता है।

भावार्थ — कृत् प्रत्यय भी 'प्रत्ययः प्रकृत्यादेः 7-4-115' सूत्र से सिर्फ धातु का विशेषण होता किन्तु

कृत् प्रत्यय गतिसंज्ञक पूर्वक धातु और कारक से पूर्वक धातु के भी विशेषण बनते हैं, इसकी स्पष्टता के लिए यह सूत्र बनाया। इस प्रकार कृत् प्रत्यय भी अधिक पद को स्वीकारते हैं।

★ परः 7-4-118

सूत्रार्थ प्रत्यय प्रकृति से पर यानि बाद में ही होता है।

विशेष 'अनन्तः पञ्चम्याः प्रत्ययः 1-1-38' सूत्र प्रत्यय की व्याख्या दर्शक सूत्र है किन्तु यह सूत्र प्रत्यय की स्थापना की व्यवस्था का दर्शक है। यदि यह सूत्र नहीं होता तो प्रत्यय (i) प्रकृति के पहले आते हैं, (ii) प्रकृति के बीच में अथवा (iii) प्रकृति के बाद आते हैं? ऐसी शंका होती।

eg. अजा → आप् प्रत्यय, वृक्षः → स्यादि प्रत्यय, जुगुप्सते → स्वार्थिक सन् प्रत्यय, त्यादि प्रत्यय।

★ स्पर्धे 7-4-119

सूत्रार्थ अन्य प्रयोग में अवकाश वाली और तुल्य बल वाली, ऐसी दो विधि का एक ही जगह पर अथवा अनेक जगह पर आ जाना (उपनिपात), इसे स्पर्द्ध या स्पर्द्धा कहते हैं। स्पर्द्धा में सूत्र पाठ में जो कार्य पर सूत्र का है, वह विधि होती है।

eg. वन + शस्, यहाँ 'शसोऽता सश्चनः पुंसि 1-4-49' सूत्र की विधि हो सकती है और यह विधि मुनि आदि शब्दों में भी अवकाश वाली है।

वन् + शस्, यहाँ 'नपुंसकस्य शिः 1-4-55' सूत्र की विधि भी हो सकती है और यह विधि पयस् आदि शब्दों में भी अवकाश वाली है।

इसलिए यहाँ दोनों विधि तुल्य बल वाली हुई, तो सूत्र के नियम से पर विधि यानि 'नपुंसकस्य शिः 1-4-55' कर वनानि' रूप सिद्ध करना।

विशेष ① 'स्पर्धे 7-4-119' सूत्र न हो तो परस्पर प्रतिबंध द्वारा या तो कोई भी सूत्र नहीं लगेगा अथवा क्रमशः दोनों सूत्र का कार्य होगा। अर्थात् दोनों में कोई भी एक पद्धति से इष्ट रूप सिद्ध नहीं होता, इसलिए यह सूत्र बनाया है।

② अन्य प्रयोग में अवकाश वाली विधि ग्रहण करने से special विधि वाले सूत्र में स्पर्द्धा नहीं होगी ऐसा सूचित किया है। यदि special सूत्र में भी स्पर्द्धा करे और पर विधि का अन्य सूत्र लगाएँ तो special विधि वाला सूत्र निरर्थक होगा। इसलिए अवकाश वाली विधि में ही स्पर्द्धा होगी।

★ आसन्नः 7-4-120

सूत्रार्थ जिस प्रकार घटित हो, उस प्रकार स्थान, अर्थ, प्रमाण आदि द्वारा आसन्न विधि ही होती है।

eg. ~~दण्डाग्रम्~~

1. स्थान- दण्डाग्रम् → दण्ड + अग्रम्, 'समानानां तेन दीर्घः 1-2-1' सूत्र से यहा समान स्वर का दीर्घ कार्य होता है किन्तु दीर्घ तो ई, ऊ आदि भी होते हैं, कौन-सा दीर्घ करना इसका नियमन

यह सूत्र करता है। यहाँ कण्ठ्य स्वर अ होने से ~~अ~~ कण्ठ्य 'आ' दीर्घ करना।

② अर्थ- वातण्ड्ययुवतिः → वतण्डस्य वृद्धापत्यं स्त्री = वतण्डी

वतण्ड + यञ् 'वतण्डात् 6-1-45' से यञ्, 'वृद्धिः स्वरेष्वादेर्ञिति तद्धिते 7-4-1" से वृद्धि

वातण्ड्य + ङी 'जातेरयान्त-नित्यस्त्री-शूद्रात् 2-4-54' से ङी, 'स्त्रियां लुपि 6-1-46' से यञ् लो

वतण्डी

वतण्डी-चासौ युवतिश्च इति वातण्ड्ययुवतिः

इस समास में 'पुंवत् कर्मधारये 3-2-57' से पुंवद्भाव हुआ। वतण्डी का पुंवद् क्या करना? इसका समाधान इस सूत्र से मिलता है। वतण्डी का पुंवद् 'वतण्ड' नहीं, किन्तु अर्थ से नजदीक 'वातण्ड्य' करना।

③ प्रमाण- अमुष्मै- अदस् + ङे → आ डेरः 2-1-41 से स् → अ

अद अ + ङे 'लुगस्यादेत्यपदे 2-1-113' से द् के अ का लुक्

अद् + ङे 'मो ऽनुस्वारः 2-1-45' से द् → म्, ~~अमुष्मैमित्~~

अम + ङे 'सर्वादेः स्मै-स्मातौ 1-4-7' से ङे → स्म

अम + स्मै → अमस्मै 'मादुवर्णोऽनु 2-1-47' से म के अ का उ

अमुष्मै

यहाँ 'मादुवर्णोऽनु 2-1-47' सूत्र में अ का उ वर्ण करना, ऐसा कहा है, किन्तु दीर्घ करना या ह्रस्व, इसका नियामक यह सूत्र है। 'अमस्मै' में म का 'अ' १ मात्रिक यानि एक मात्रा वाला ह्रस्व है तो 'आसन्नः' सूत्र से प्रमाण में एक मात्रा वाला उ हुआ।

अमूभ्याम्- अदस् + भ्याम् 'आ डेरः 2-1-41' से स् का अ

अद अ + भ्याम् 'लुगस्यादेत्यपदे 2-1-113' से द के अ का लुक्

अद् + भ्याम् 'मो ऽनुस्वारः 2-1-45' से द का म

अम + भ्याम् 'अत आः स्यादौ जस्-भ्याम्-ये 1-4-1' से अ का आ

अमा भ्याम् 'मादुवर्णोऽनु 2-1-47' से आ का ऊ

अमूभ्याम्

यहाँ 'आ' द्विमात्रिक है तो 'आसन्नः 2-1-120' से प्रमाण में द्विमात्रिक ऊ हुआ।

★ सूत्रार्थ सम्बन्धिनां सम्बन्धे 7-4-121

सम्बन्ध वाले शब्दों का जो कार्य कहा गया है, वह कार्य संबंध होने पर ही होता है।

~~श्वसुर्यः → श्वसुरस्य अपत्यं स्त्र~~

धृ. ① श्वशुर्यः → श्वशुरस्य अपत्यं = श्वशुर्यः

यहाँ 'श्वशुरात् यः 6-1-91' सूत्र से य प्रत्यय हुआ है। 'श्वशुरात् यः 6-1-91' में श्वशुर शब्द श्वशुर संबंध वाला लेना है, संज्ञात्मक नहीं। इसलिए अपत्य अर्थ में य प्रत्यय ~~य~~ यदि श्वशुर संबंध का अपत्य होगा तो ही कार्य होगा, संज्ञा वाले श्वशुर शब्द में 'य' नहीं होगा।

श्वाशुरिः → श्वशुरस्य अपत्यं = श्वाशुरिः

यहाँ 'अत इञ् 6-1-31' सूत्र से इञ् प्रत्यय हुआ है। किन्तु यहाँ संज्ञात्मक श्वशुर ही लेना है, संबंधी मात्र श्वशुर नहीं।

② मातृष्वसा = मातुः स्वसा। यहाँ 'मातृ-पितुः स्वसुः 2-3-18' सूत्र से स् का ष् हुआ है। किन्तु 2-3-18 में मातृ शब्द माता वाचक ही लेना है, इसलिए स् का ष् भी 'माता की बहन' अर्थ के ही होगा, अन्य अर्थ में नहीं।
मातृस्वसा = मातुः स्वसा। मा धातु, तृन् प्रत्यय, अर्थ हुआ मापने वाला। यहाँ पर 2-3-18 से स् का ष् नहीं होगा क्योंकि मातृ शब्द का अर्थ माता वाचक नहीं है।

★ समर्थः पदविधिः 7-4-122

सूत्रार्थ समर्थ पद के आश्रय पन से समर्थ जानना। पद संबंधी जो विधि, वह पदविधि। सभी पदविधि समर्थ जानने लायक हैं।
जिसमें सामर्थ्य हो वह समर्थ। यहाँ पदविधि को समर्थ बोला यानि पदविधि में सामर्थ्य है। पदविधि में सामर्थ्य दो प्रकार का- 1. व्यपेक्षा = एक पद को दूसरे पद की अपेक्षा अर्थात् पदों में परस्पर अपेक्षा ; 2. एकार्थीभाव = पद स्वयं के अर्थ को छोड़कर एक अर्थ वाले भाव को प्राप्त करते हैं, यानि स्वयं के अर्थ छोड़कर अन्य अर्थ बताते हैं।
पदविधि - 7 प्रकार की।

eg. ① समास- धर्मश्रितः = धर्मं श्रितः 'श्रितादिभिः 3-1-62' से समास।
यहाँ दोनों पद परस्पर अपेक्षा वाले और स्वयं के अर्थ को छोड़कर कोई व्यक्ति के अर्थ को द्योतित करते हैं।

② नामधातु- पुत्रीयति = पुत्रमिच्छति इति क्यच्
यहाँ भी दोनों पद अपेक्षा वाले और एकार्थीभाव वाले हैं।

③ कृत्- कुम्भकारः = कुम्भं करोति इति अण् 'कर्मणोऽण् 5-1-72'
यहाँ भी व्यपेक्षा और एकार्थीभाव है।

④ तद्धित- औपगवः = उपगुः (गोत्रात्) उपगोः अपत्यं इति औपगवः
उपगु + अण् 'इतोऽत्ये 6-1-28, वृद्धिः स्वरेष्वादेर्णिति तद्धिते 7-4-1'
औपगवः 'अस्यर्ध्यम्भुवोऽव् 7-4-70' से उ का अव्

⑤ ~~विभक्ति- नमो~~

⑤ उपपद विभक्ति- नमो देवेभ्यः। यहाँ व्यपेक्षा और एकार्थीभाव से विभक्ति हुई।

⑥ युष्मदस्मदादेश- धर्मस्ते स्वम्, धर्मो मे स्वम्

⑦ प्लुत- अइ३ग! कूज३ इदानीं हास्यसि जाल्म! हे! धीवर बोल, अभी शठ जान लेगा।

अतिउदाहरण समर्थ इति किम्? क्या पदविधि व्यपेक्षा और एकार्थीभाव वाली ही होती है? हाँ, जहाँ ⑧ ~~समास~~ पदों में व्यपेक्षा और एकार्थीभाव नहीं है, वहाँ पदों का योग होने पर भी पदविधि नहीं होती।

① समास- पश्य धर्मं श्रितो मैत्रो गुरुकुलम् = तू धर्म को देख, मैत्र तो गुरुकुल को आश्रित है।
यहाँ धर्मं और श्रितः पद का योग तो है किन्तु परस्पर व्यपेक्षा और एकार्थीभाव नहीं है इसलिए 'श्रितादिभिः 3-1-62' सूत्र नहीं लगेगा।

② नामधातु- पश्यति पुत्रमिच्छति सुखम् = वह पुत्र को देखता है और सुख को इच्छता है। यहाँ व्यपेक्षा और एकार्थीभाव नहीं होनेसे 'पुत्रीयति' नहीं होगा।

③ कृत्- पश्य कुम्भं करोति करम् = तू कुंभ को देख और, वह कर करता है। यहाँ भी व्यपेक्षा और एकार्थीभाव का अभाव होने अण् प्रत्यय नहीं लगेगा।

④ तद्धित- गृहमुपगोरपत्यं तत = गोवाल का घर, तेरा पुत्र।

⑤ उपपद विभक्ति- इदं नमो देवाः। शृणुत = हे देवों! इस नमस्कार को सुनो।

⑥ युष्मदस्मदादेश- ओदनं पच तव मम वा भविष्यति = तू चावल पका, तेरा अथवा मेरा होगा।
युष्मद् और अस्मद् के आदेश पद के बाद ही होते हैं। यहाँ 'पच' पद है किन्तु वह तव या मम के साथ व्यपेक्षा और एकार्थीभाव वाला नहीं है।

⑦ व्युत - अइगा! कूजत्ययमिदानीं ज्ञास्यति जात्म! ⇒ हे! यह शोर बोलता है, वह जात्म शठ जानेगा

विशेष ① पदोक्तवर्णविधिरसामर्थ्येऽपि स्यात् = पद में कही गई वर्णविधि (संधि आदि) परस्पर सामर्थ्य न होने पर भी होगी। eg. तिष्ठतु दधयशान त्वं शाकेन = बस बैठे, दही जमें, तू शाक के साथ खा।
यहाँ दधि और अशान में व्यपेक्षा और एकार्थीभाव रूप सामर्थ्य नहीं है, इसलिए पदविधि नहीं होगी किन्तु पदों में कही वर्णों की विधि (संधि) हुई।

② धातु से होने वाली विभक्ति 3 प्रकार की - (i) कारक - कारक के सूत्र लगाकर जो विभक्ति हो, वह
(ii) उपपद विभक्ति - जो किसी निश्चित पद के साथ ही हो।
(iii) अर्थ - जो किसी विशिष्ट अर्थ में हो eg. रुचि-कृच्यर्थ-धारिभिः प्रेय-विकारोक्तमर्णेषु 2-2-55' आदि
इस सूत्र में दूसरे प्रकार की उपपद विभक्ति ही लेना है।

—×—